''हमने आप ही सुन लिया''

7 हेबिट्स ऑफ़ हाइली इफ़ेक्टिव पीपल नामक अपनी पुस्तक में, स्टीफन कोवे ने अपने पाठकों को ''मन में लक्ष्य लेकर आरम्भ'' करने के लिए प्रोत्साहित किया है। साधारण होने के बावजूद इस विचार का अर्थ गूढ़ है। कोवे ने लिखा है:

> जीवन की व्यस्तता में सफलता की सीढ़ी पर चढ़ने के लिए कठिन से कठिन परिश्रम करने के जाल में फंसना और बाद में पता चलना कि यह तो गलत दीवार थी बहुत ही आसान है।[1]

उसने आगे लिखा है:

> हो सकता है हम बहुत व्यस्त हों, हो सकता है हम बहुत कुशल हों, परन्तु फलदायक हम वास्तव में तभी हो सकते हैं यदि मन में लक्ष्य लेकर आरम्भ करें।[2]

कोवे ने अपने पाठ को अपने ही जनाज़े को देखने की तस्वीर बनाने के लिए कहकर अपनी बात को समझाने की कोशिश की है। (हाल ही में, उसने इसे गवाही के लिए दिए गए रात्रि भोज में बदल दिया ताकि पूरा दृश्य इतना निराशाजनक न लगे!) कल्पना कीजिए कि जनाज़े (अंतिम संस्कार) के लिए आए अतिथियों में चार लोग बातें करने लगते हैं। पहला व्यक्ति आपके परिवार का ही सदस्य है। दूसरा आपका कोई मित्र है। तीसरा आपका सहकर्मी और चौथा उस चर्च अर्थात कलीसिया का सदस्य है जिसमें आप आराधना करते हैं। आपको क्या आशा होगी कि वे क्या बातें करेंगे? कोवे ने सुझाव दिया कि हम चाहेंगे कि जो कुछ वे हमारे जीवन के सिद्धांतों से मिलने वाली अगुआई की चर्चा करें। जीवन के अन्त की कल्पना करके, जीने की तैयारी हम अच्छी तरह से ही कर सकते हैं!

यूहन्ना रचित सुसमाचार के अपने अध्ययन को आरम्भ करने के लिए हमें वही बात करनी चाहिए अर्थात यह कि मन में लक्ष्य और सच्ची लगन रखकर अध्ययन का आरम्भ करें। सौभाग्यवश, सुसमाचार की इस पुस्तक का केन्द्र-बिन्दु तथा लक्ष्य स्पष्ट तौर पर व्यक्त किया गया है और यूहन्ना 4:39-42 हमारे लिए वह तस्वीर प्रस्तुत करता है जहां हम इस अध्ययन में जाएंगी।

यीशु और सामरी स्त्री

यूहन्ना 4 अध्याय में यीशु और उसके चेले इस्राएल के दक्षिणी भाग यहूदिया से निकलकर उत्तर की ओर गलील नामक नगर की ओर चल पड़े। सामरिया इन दोनों के बीच पड़ता था। यहां के लोगों को यहूदी लोग संदेह तथा तिरस्कार की दृष्टि से देखते थे, अत: सचेत यहूदी उस क्षेत्र में जाने से हर सम्भव परहेज़ करते थे। लेकिन, यीशु और उसके चेले सामरिया के मार्ग से गए। याकूब के कुएं के नाम से प्रसिद्ध स्थान पर पहुंचने तक यीशु और उसके चेलों को भूख लग गई थी और वे थक गए थे। विश्राम करने के लिए यीशु वहीं बैठ गया, जबकि चेले खाने के लिए कुछ खरीदने के लिए पास के सूखार नामक नगर में चले गए। उसके वहां प्रतीक्षा करते हुए एक स्त्री कुएं पर पानी लेने आई। यीशु और उस स्त्री में हुए वार्तालाप से ही सामरिया में विश्वास का सफ़र आरम्भ हुआ!

सामरी स्त्री को समझ आने लगा था कि वार्तालाप को उसके निजी जीवन में ले जाने वाला यीशु कोई साधारण व्यक्ति नहीं था। यीशु द्वारा उस स्त्री से यह कहने पर कि, ''जा, अपने पति को यहां बुला ला'' (4:16) उसने यीशु को बताया कि उसका तो कोई पति ही नहीं है। यीशु ने उत्तर दिया, ''तू ठीक कहती है कि मैं बिना पति की हूं। क्योंकि तू पांच पति कर चुकी है, और जिस के पास तू अब है वह भी तेरा पति नहीं; यह तू ने सच कहा है'' (4:17, 18)। यीशु की यह बात सुनकर वह कहने लगी, ''हे प्रभु, मुझे ज्ञात होता है कि तू भविष्यवक्ता है'' (4:19)।

यीशु और वह स्त्री आराधना, आने वाले मसीह, यहूदियों और सामरियों की समस्या जैसे विषयों पर चर्चा करते हुए बातें करते रहे। यीशु के चेलों के वापस आने पर वह स्त्री यीशु से हुई मुलाकात के बारे में लोगों को बताने के लिए (जल का अपना मटका कुएं पर ही छोड़कर) नगर की ओर भाग गई थी। उसने जाकर लोगों से कहा, ''आओ, एक मनुष्य को देखो, जिस ने सब कुछ जो मैंने किया मुझे बता दिया: कहीं यही तो मसीह नहीं है ?'' (4:29)। इस प्रकार उसने दूसरों को विश्वास के सफ़र पर चलने में अगुआई दी।

यीशु और सामरी लोग

याकूब के कुएं पर पहुंचते-पहुंचते, सूखार के लोग उस स्त्री से सुनकर यीशु में थोड़ा बहुत विश्वास पहले ही करने लगे थे (4:39)। इसलिए वे उससे उनके पास रहने की ''बिनती करने लगे।'' यीशु मान गया और उनके वहां दो दिन और ठहरा। जिस कारण ''और भी बहुतेरों ने विश्वास किया'' (4:41)। इस घटना का निष्कर्ष सामरिया के लोगों द्वारा उस स्त्री से कही बात है जिसने उन्हें पहले यीशु के बारे में बताया था। उनके शब्दों से हमें विश्वास की यात्रा या सफ़र में निकलने के लिए एक नक्शा (रोड मैप) मिल जाता है: ''अब हम तेरे कहने से ही विश्वास नहीं करते; क्योंकि हम ने आप ही सुन लिया, और जानते हैं कि यही सचमुच में जगत का उद्धारकर्त्ता है'' (4:42)। पहले तो उन्होंने ''उस स्त्री के कहने से'' (4:39) यीशु में विश्वास किया था, परन्तु बाद में उन्होंने ''उसके वचन के कारण विश्वास किया'' (4:41)! किसी से सुनकर विश्वास करने का आरम्भ अब यीशु

नाम के उस व्यक्ति के साथ निजी अनुभव से दृढ़ हो गया था!

यीशु और हम

हम में से लगभग सबके विश्वास का सफ़र अपने से मज़बूत विश्वास वाले व्यक्ति के विश्वास के कंधों पर सवार होकर ही होती है। अधिकतर लोगों के लिए, यह कंधा उनके माता–पिता का विश्वास होता है। हम उनके विश्वास तथा समर्पण को देखते हैं और उनके प्रति सम्मान रखने के कारण, मान लेते हैं कि जो वे विश्वास करते हैं वह सही ही होगा। किसी के लिए, यह कंधा किसी मित्र का विश्वास हो सकता है। कभी–कभी संदेह में घिरे होने पर हम अपने मित्रों के दृढ़ इरादे तथा निश्चितता से सीख लेते हैं। ऐसे भी लोग हैं जिनका विश्वास किसी प्रसिद्ध प्रचारक, विशेष शिक्षक या किसी प्रिय नौजवान सेवक के जीवन और बातों से बढ़ा हो।

किसी दूसरे की पीठ पर बैठकर विश्वास का सफ़र आरम्भ करना बुरी बात *नहीं* है! यह स्वाभाविक और सामान्य है अर्थात इसकी अपेक्षा होनी चाहिए और इसके लिए माता–पिता को चाहिए कि वे विशेष रूप से प्रार्थना करें। इस प्रकार के विश्वास में केवल एक ही समस्या खड़ी होती है, जब यह वहीं का वहीं रहता और पक्का विश्वास नहीं बन पाता। अन्ततः, किसी दूसरे के विश्वास के आधार पर बना विश्वास संतुष्टि नहीं दे पाता और न ही वयस्क बनने का बोझ उठा पाता है।

इस प्रकार, विश्वास बच्चों के झूले की तरह है। मेरी बेटियां जब बहुत छोटी थीं, तो उन्हें झूला झूलना बहुत अच्छा लगता था। जब उनकी मां रसोई में खाना बना रही होती या मैं अध्ययन कर रहा होता तो वे झूले पर चढ़ जाती थीं। बच्चों का वह झूला उनकी आयु के अनुरूप उस समय तो मज़बूत था। इससे वे सुरक्षित आरामदायक और प्रसन्न रहती थीं। लेकिन अब मेरी एक बेटी ग्यारह और दूसरी तेरह वर्ष की हो गई है। आज यदि वे उसी पुराने झूले में बैठने की कोशिश करें तो उनके लिए यह एक बहुत ही अलग अनुभव होगा! वे उस झूले में बैठ नहीं पाएंगी, और वह टूट भी सकता है। क्या इसका अर्थ यह हुआ कि झूले में कोई बुराई है? निश्चय ही झूले में कोई बुराई नहीं है। लड़कियां ही इतनी बड़ी हो गई हैं कि अब झूले में नहीं आतीं और उन्हें इतना बड़ा झूला चाहिए जो उनका भार सह सकता हो।

विश्वास भी कुछ ऐसा ही है। आरम्भ में दूसरे के विश्वास से हुआ विश्वास हमारे सामने जीवन से जुड़े विषयों का बोझ उठाने के लिए काफ़ी होता है। परन्तु, वह समय भी आता है जब हमें जीवन भर चलने के लिए कुछ और आवश्यकता होती है। ऐसे समय में, हमें उस विश्वास की आवश्यकता होती है जो यीशु के साथ हमारी अपनी मुलाकात और उसके बारे में हमारी अपनी निश्चितता पर बना हो। कॉलेज की कलीसिया के साथ काम करते हुए बहुत से युवकों को मैं गम्भीर नैतिक परीक्षाओं का सामना करते हुए देखता हूं। आज के इस संसार में ईमानदार, शुद्ध तथा संयमी रहना एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। यदि छात्र अपने माता–पिता के विश्वास के सहारे इन परीक्षाओं का सामना करते हैं, तो वे बहुत बड़ी मुश्किल में हैं। वयस्क होने पर संघर्षों का सामना करते हुए, यीशु में उनका विश्वास भी बढ़ना आवश्यक है।

किशोरावस्था में लिए गए निर्णयों का परिणाम बाद में भी भुगतना पड़ता है। बाद के वर्षों में, बहुत से लोगों को अपने विवाह सम्बन्धी मामलों में कठिनाई का सामना करना पड़ेगा। इस संसार में जहां ''जब तक मौत हमें जुदा न करे'' का अर्थ ''जब तक कोई मुश्किल न आ पड़े'' होने लगा है, विवाहित रहने का सामाजिक उत्साह बहुत कम मिलता है। कठिन समयों में, वैवाहिक सम्बन्ध को बनाए रखने के लिए दूसरों के विश्वास से बढ़कर अपने विश्वास की अधिक आवश्यकता होती है। नये नियम की पत्रियों में भी, हम हर बार यही संकेत पाते हैं कि हर कलीसिया में समस्याएं होती हैं। हम कलीसिया के लोगों से परेशान हो सकते हैं और हर हाल में उनसे दूरी बनाए रखने की इच्छा कर सकते हैं। समस्या से छुटकारा दिलाने के लिए दूसरों के विश्वास के सहारे अधिक देर तक नहीं रहा जा सकता।

असफलता से हमें एक दृढ़, व्यक्तिगत विश्वास का महत्व भी मिलता है। इस साल मुझे अपने बीस वर्ष के हाई स्कूल के पुनर्मिलन कार्यक्रम में जाने की उम्मीद है। दस वर्ष बाद पुनर्मिलन के समय लगता था कि हाई स्कूल से निकलने के पहले दस वर्षों में हमें काफ़ी बड़ी असफलताओं का सामना करना पड़ेगा। असफलता हमारे जीवन का एक अभिन्न अंग है और असफलताओं का सामना करने के हमारे ढंग से पता चलता है कि हम क्या बन गए हैं। दूसरे विश्वास से असफलताओं का सामना करने में कम सहायता मिलती है।

विरासत में मिला विश्वास कुछ समय के लिए सही है। खोज करने, सीखने और आगे बढ़ने में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। वयस्क संसार का सामना करने और जीवन के तूफ़ानों के थपेड़े पड़ने पर हमें पता होना चाहिए कि हम कहां हैं और जहां हम हैं वहां क्यों हैं!

यूहन्ना रचित सुसमाचार और आप

यूहन्ना रचित सुसमाचार पक्के, मज़बूत तथा और अधिक व्यक्तिगत विश्वास की हमारी आवश्यकता को ध्यान में रखकर लिखा गया था। सुसमाचार की इस पुस्तक के अन्त में लेखक ने इसे लिखने के लिए आत्मा के उद्देश्य को व्यक्त किया है:

> यीशु ने और भी बहुत चिह्न चेलों के साम्हने दिखाए, जो इस पुस्तक में लिखे नहीं गए। परन्तु ये इसलिए लिखे गए हैं, कि तुम विश्वास करो, कि यीशु ही परमेश्वर का पुत्र मसीह है: और विश्वास करके उसके नाम से जीवन पाओ (20:30, 31)।

अपने इस अध्ययन में हम देखेंगे कि यूहन्ना ने जिस विश्वास के बारे में लिखा है, वह विश्वास यीशु के परमेश्वर के पुत्र होने के दावों को सत्य मानने से कहीं बढ़कर है। इसमें यह जानते हुए कि वह हमें ऊंचा उठा सकता है और उठाएगा, उसकी प्रतिज्ञाओं के प्रति निष्ठावान रहने और अपने जीवनों को पूरी तरह से उस पर छोड़ देना शामिल है। सुसमाचार

की इस पूरी पुस्तक में, यूहन्ना ने हमसे हर प्रकार के छल से बचने का आग्रह करते हुए बड़ी सावधानी से बताया है कि बाइबल के अनुसार विश्वास क्या है और क्या नहीं है। पुस्तक में अठानवें बार हमें अपने विश्वास को परखने के लिए सामरियों का अनुसरण करने के लिए ज़ोर दिया गया है। जैसा कि हम शीघ्र ही देखेंगे, विश्वास का सफ़र न तो आसान है और न ही आरामदायक। दुखी करने वाले प्रश्नों का सामना करना और कठोर निर्णय लेना ज़रूरी है। यह सफ़र बहुत ही महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसका अन्त मसीह अर्थात परमेश्वर के पुत्र के रूप में, यीशु में अपना निजी विश्वास है जिसमें हमें अनन्त जीवन मिलता है!

सारांश

सी. एस. लूईस की पुस्तक *क्रोनिकल्स ऑफ़ नारनिया* के आरम्भ में बच्चों की एक टोली के बारे में बताया गया है जिन्हें द्वितीय विश्वयुद्ध में बम-वर्षा के समय लंदन से दूर गांव की ओर एक सुरक्षित स्थान पर भेज दिया गया था। बच्चे एक बहुत बड़े घर में रहने के लिए चले गए जहां घूमने और खेलने के लिए बहुत से कमरे थे। एक दिन जब वे खेल रहे थे, तो लूसी एक बड़ी अलमारी में घुस गई। जब वह अलमारी की पिछली ओर चलती गई तो उसने देखा कि यह रास्ता एक जंगल में खुलता है। वह चलती रही और शीघ्र ही उसने अपने आपको बर्फ़ पर चलते हुए पाया। इस बात का तो उसे बाद में पता चला कि अलमारी में चलते हुए वह नारनिया नामक देश की धरती में पहुंच गई थी।

यूहन्ना रचित सुसमाचार भी कुछ ऐसा ही है। पहले तो यह यीशु के बारे में और उन लोगों के बारे में एक पुस्तक लगता है जो आज से लगभग दो हज़ार वर्ष पूर्व हुए हैं अर्थात यीशु और कुएं पर स्त्री, यीशु और जन्म का अन्धा, यीशु और काना नामक गांव में विवाह में आए अतिथि। परन्तु इन कहानियों का अध्ययन करते हुए कुछ अजीब सी बात होती है अर्थात प्रवेश तो हम ''अलमारी'' में करते हैं परन्तु अपने आपको यीशु के सामने खड़ा पाते हैं। वहां उसकी बातें सुनकर, उसे देखकर और उससे मिलकर, हम उस अतिमहत्वपूर्ण और रोमांचक सफ़र पर निकल पड़ते हैं जिसे लोग विश्वास का सफ़र कहते हैं।

इस अध्ययन को मिलकर आरम्भ करते हुए, मैं आपसे कहूंगा कि पहले आप प्रतिज्ञा करें और फिर एक लक्ष्य निर्धारित कर लें। यह प्रतिज्ञा अपने आपको परेशान करने वाले प्रश्न पूछकर कि ''क्या मैं प्राण देकर उसमें भरोसा रख सकता हूं?'' यीशु के जीवन में गहराई से देखने का साहस है। मैं आपको अपना विश्वास बढ़ाने का लक्ष्य रखने की चुनौती देता हूं जो यीशु से आपके मेल पर अधिक निर्भर करता है न कि उसके बारे में दूसरों से सुनने पर। आप तेरह वर्ष के हों या तिरानवे के, गैर मसीही हों या साठ वर्षों से मसीही, यह प्रतिज्ञा तथा लक्ष्य बहुत ही महत्वपूर्ण है! क्या आप विश्वास के उस सफ़र में हमारे साथ चलना चाहेंगे। जो कि आपके जीवन का बहुत महत्वपूर्ण सफ़र है? इस चुनौती पर चिन्तन करते हुए, प्रार्थना भरे शब्दों वाले गीत के अनुवाद पर विचार कीजिए:

हे प्रभु, हमारी आंखें खोल दे, हम यीशु को देखना चाहते हैं,
उसके पास जाकर उसे छूना, और यह कहना चाहते हैं
कि हम उससे प्रेम करते हैं।
हे प्रभु, हमारे कान खोल दे और सुनने में हमारी सहायता कर।
हे प्रभु, हमारी आंखें खोल दे, हम यीशु को देखना चाहते हैं।[3]

पाद टिप्पणियां

[1]स्टीफन कोवे, *7 हैबिट्स ऑफ़ हाइली इफ़ेक्टिक पीपल* (न्यूयार्क: साइमन एण्ड शुस्तर, 1989), 98.
[2]वहीं। [3]"ओपन अवर आइज़, लॉर्ड" बॉब कुल मारानाथा द्वारा कॉपीराइट 1976. (कॉपीराइट कंपनी, नैशविल्ले, टैनि. के प्रबन्धन में) सर्वाधिकार सुरक्षित। अंतरराष्ट्रीय कॉपीराइट सुरक्षित। अनुमति लेकर छापा गया।